UGC NET - COMMERCE
SAMPLE THEORY

PAPER - III

- परिचालक एवं वित्तीय उत्तोलक
- पूँजी संरचना

VPM CLASSES
For IIT-JAM, JNU, GATE, NET, NIMCET and Other Entrance Exams
1-C-8, Sheela Chowdhary Road, Talwandi, Kota (Raj.) Tel No. 0744-2429714
Web Site www.vpmclasses.com E-mail-vpmclasses@yahoo.com

परिचालक एवं वित्तीय उत्तोलक –

उत्तोलक का अर्थ :

यान्त्रिकी विज्ञान में उत्तोलक से अभिप्राय ऐसी तकनीक के प्रयोग से लिया जाता है, जिससे अधिक भार को कम शक्ति के प्रयोग से उठाया जा सके। इस आशय हेतु एक आधार पर किसी उत्तोलक का प्रयोग किया जाता है। वित्तीय प्रबन्ध में यह आधार स्थायी लागतों का होता है तथा उत्तोलक विभिन्न प्रकार की पूँजी का मिश्रण होता है।

एक संस्था क्ति पूर्ति हेतु पूंजी लागत या प्रत्याय के दृष्टिकोण से दो प्रकार की पूँजी का प्रयोग कर सकती है। ऐसी पूँजी जिस पर प्रत्याय की दर स्थिर होती है तथा ऐसी पूँजी जिस पर प्रत्याय की दर परिवर्तनशील होती है। स्थायी प्रत्याय दर वाली पूंजी में ऋण–पत्र, दीर्घकालीन ऋण एवं पूर्वाधिकार अंशों को सम्मिलित किया जाता है, जबकि परिवर्तनशील–प्रत्याय दर वाली पूँजी में साधारण अंश पूँजी एवं प्रतिधारित अर्जनों को सम्मिलित किया जाता है।

अतः वित्तीय प्रबन्ध में उत्तोलक से अभिप्राय ऐसी सम्पत्तियों या कोषों के प्रयोग से है जिनके लिए संस्था एक स्थायी लागत या प्रत्याय चुकाती है। स्थायी लागतों को वहन करने तथा चुकाने की क्षमता क्रमशः लाभदायकता एवं वित्तीय सुदृढ़ता को प्रभावित करती है। अतः स्थायी लागत भार उत्तोलक के आधार का कार्य करती है। यदि संस्था द्वारा अर्जित ब्याज व कर घटाने के पूर्व के लाभ स्थायी लागत या स्थायी प्रत्याय से अधिक हों तो अनुकूल उत्तोलक कहलायेगा । इसके विपरीत यदि स्थायी लागत या प्रत्याय संस्था द्वारा अर्जित ब्याज व कर से पूर्व लाभों से अधिक हो तो यह प्रतिकूल उत्तोलक कहलायेगा।

उत्तोलक की विशेषताएँ :

उत्तोलक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. उत्तोलक विक्रय में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप लाभों में होने वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है।

2. जितना अधिक उत्तोलक होगा, लाभ भी उतने ही अधिक होंगे तथा कम उत्तोलक की स्थिति में लाभ भी कम ही होंगे ।

3. उत्तोलक बिक्री की मात्रा और परिचालक लाभों के मध्य संबंध स्थापित करता है।

4. उत्तोलक विश्लेषण हेतु एक यंत्र या औजार है।

5. उत्तोलक परिचालन लागतों को नियंत्रित करने में प्रबन्ध की सहायता करता है।

6. उत्तोलक माल की बिक्री हेतु की गई स्थायी लागतों को प्रदर्शित करता है।

उत्तोलक के प्रकार :

व्यवस्था में उत्तोलक दो प्रकार का हो सकता है प्रथम परिचालन उत्तोलक एवं द्वितीय–वित्तीय उत्तोलक। इन दोनों उत्तोलकों को मिलाकर संयुक्त उत्तोलक की गणना भी की जाती है।

परिचालन उत्तोलक :

यदि किसी संस्था को अपने उत्पादन कार्य में स्थायी लागतें अथवा स्थायी व्यय वहन करने पड़ते हों जिनका कि उत्पादन स्तर से कोई सम्बन्ध न हो तो हम कहेंगे कि संस्था में परिचालन उत्तोलक विद्यमान है। संस्था की परिचालन लागतों को प्रमुखतः स्थायी, परिवर्तनशील एवं अर्द्ध–परिवर्तनशील लागतों में विभक्त किया जाता है। परिवर्तनशील लागतें ऐसी लागतें होती हैं जिनका उत्पादन स्तर से कोई सम्बन्ध नहीं होता है तथा उत्पादन शून्य होने पर भी संस्था को ये लागतें वहन करनी होती है । अर्द्ध–परिवर्तनशील लागतें वे लागतें होती हैं जो उत्पादन के एक स्तर तक स्थायी होती हैं तथा उस स्तर के पश्चात् परिवर्तनशील होती है। सामान्यतया अर्द्ध–परिवर्तनशील लागतों का स्थायी अंश स्थायी लागतों में तथा परिवर्तनशील अंश परिवर्तनशील लागतों में जोड़ दिया जाता है। अतः प्रमुख रूप से स्थायी एवं परिवर्तन लागतें ही महत्त्वपूर्ण रह जाती हैं।

यदि किसी संस्था में स्थायी लागतें हैं तथा एक निश्चित सीमा या वर्तमान सीमा से उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन किया जाये तो उत्पादन दर में परिवर्तन की अपेक्षा लाभ दर में परिवर्तन अधिक होगा। इस परिवर्तन के सापेक्ष अध्ययन को परिचालक उत्तोलक की मात्रा के नाम से जाना जाता हे। जिस संस्था में परिचालक उत्तोलक विद्यमान होगा, उसमें विक्रय की मात्रा में मामूली परिवर्तन के परिणामस्वरूप परिचालन लाभों में तुलनात्मक रूप से अधिक परिवर्तन होगा।

परिभाषाएँ –

परिचालक उत्तोलक की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

''यदि एक फर्म की कुछ लागतों में स्थायी लागतों का प्रतिशत ज्यादा है तो यह कहा जायेगा कि फर्म में उच्च मात्रा का परिचालक उत्तोलक है।''

''परिचालक उत्तोलक को स्थायी परिचालन लागतों के उपयोग के फलस्वरूप दी गई विक्रय मात्रा में हुये परिवर्तनों की तुलना लाभों में हुये परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

परिचालन उत्तोलक की विशेषताएँ –

परिचालक उत्तोलक की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **स्थायी लागतों से सम्बन्धित** – परिचालक उत्तोलक स्थायी लागतों से सम्बन्धित होता है। यदि किसी संस्था में स्थायी लागतें अधिक हैं तो परिचालन उत्तोलक अधिक होगा एवं किसी संस्था में यदि स्थायी लागतें कम हैं तो परिचालन उत्तोलक कम होगा।
2. **सम–विच्छेद बिन्दु के निकट सर्वाधिक परिचालन उत्तोलक** – परिचालक उत्तोलक की मात्रा किसी भी संस्था के सम–विच्छेद बिन्दु से दूर होता जाता है त्यों–त्यों परिचालन उत्तोलक की मात्रा कम होती जाती है। सम–विच्छेद बिन्दुके निकट अधिक परिचालन उत्तोलक की मात्रा यह दर्शाती है कि सम–विच्छेद बिन्दु के निकट यदि विक्रय की मात्रा में जरा भी वृद्धि होती है तो अधिक परिचालन उत्तोलक के प्रभाव से परिचालन लाभों (EBIT) में तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक वृद्धि होगी।
3. **व्यावसायिक जोखिम** – परिचालक उत्तोलक के कारण व्यवसाय के लाभों के साथ–साथ व्यावसायिक जोखिम में भी वृद्धि होती है। उच्च परिचालन उत्तोलक की स्थिति में एक तरफ विक्रय में मामूली–सी वृद्धि के कारण परिचालन लाभों में वृद्धि तुलनात्मक रूप से अधिक होती है तो दूसरी ओर विक्रय में मामूली–सी कमी होने पर परिचालन लाभों में कमी तुलनात्मक रूप में अधिक होती है।
4. **स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण पर प्रभाव–** परिचालन उत्तोलक स्थायी लागत वाली सम्पत्तियों के उपयोग के कारण उत्पन्न होता है, फलस्वरूप यह चिट्ठे के सम्पत्ति पक्ष में स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण को प्रभावित करता है।

परिचालन उत्तोलक का महत्त्व –

परिचालन उत्तोलक का महत्त्व निम्नलिखित है–

(i) **पूँजी बजटन निर्णयों में सहायक** – ब्राइगम के अनुसार, '' परिचालन उत्तोलक अवधारणा का विकास ही मूल रूप से पूँजी बजटन निर्णयों में उपयोग के लिए हुआ था'' परिचालन उत्तोलक स्थायी लागतों से सम्बन्धित होने के कारण पूँजी बजटन निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ii) **पूँजी संरचना निर्णयों में सहायक** – परिचालन उत्तोलक पूँजी संरचना निर्णयों को भी प्रभावित करता है। उच्च परिचालन उत्तोलक से अधिक जोखिम व अधिक लाभ की प्राप्ति होती है जबकि निम्न परिचालन उत्तोलक से कम जोखिम व कम लाभ की प्राप्ति होती है। अतः एक फर्म वांछित लाभदायक व जोखिम को ध्यान में रखते हुए ही पूंजी संरचना नियोजन करती है।

परिचालन उत्तोलक की कमियाँ

परिचालन उत्तोलक की प्रमुख कमियाँ इस प्रकार हैं–

1. परिचालन उत्तोलक की विश्वसनीयता स्थायी लागतों का उत्पादों के साथ सही–सही अनुभाजन पर निर्भर करती है। दोषपूर्ण अनुभाजन से उत्तोलक की उपयोगिता ही समाप्त हो जाती है।

2. संस्था के बाहर के व्यक्तियों के लिए परिचालक उत्तोलक की गणना करना आसान कार्य नहीं है, क्योंकि प्रकाशित खाते किसी उत्पाद विशेष की स्थायी लागतों एवं अंशदान के बारे में विस्तृत विवरण प्रदान नहीं करते हैं।

परिचालन उत्तोलक की गणना

बिक्री के किसी एक स्तर पर परिचालन उत्तोलक की गणना निम्न सूत्र की सहायता से की जा सकती है–

$$\text{Operating Leverage} = \frac{\text{Contribution}}{\text{Operating Profit or EBIT}}$$

अथवा

$$\frac{\text{Salses} - \text{Variable Cost}}{\text{Contribution} - \text{Fixed cost}}$$

अंशदान के स्थायी लागतों से अधिक होने पर अनुकूल परिचालन उत्तोलक होना जबकि स्थायी लागतें यदि अंशदान से अधिक होती हैं तो प्रतिकूल परिचालन उत्तोलक होगा।

परिचालक उत्तोलक की मात्रा

परिचालक उत्तोलक की मात्रा की गणना विक्रय के दो स्तरों के परिणाम के आधार पर की जाती है। इसे परिचालक लाभों में प्रतिशत परिवर्तन को विक्रय में प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है। परिचालन उत्तोलक की मात्रा की गणना निम्न सूत्र से की जाती है–

$$\text{Degree of Operating Leverage (DOL)} = \frac{\%\text{Change in Profit}}{\%\text{Change in Sales}}$$

परिचालन उत्तोलक की मात्रा यह दर्शाती है कि यदि बिक्री में परिवर्तन होता है तो लाभों में परिवर्तन परिचालन उत्तोलक की मात्रा का गुणा होगा। उदाहरणार्थ, यदि परिचालन उत्तोलक की मात्रा 2 हो तो बिक्री में परिवर्तन होने पर लाभों में उसका दो गुना परिवर्तन होगा।

परिचालन उत्तोलक एवं समविच्छेद विश्लेषण

वित्तीय प्रबन्धक विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने के लिए विक्रय का वह न्यूनतम स्तर जानना चाहेगा जहाँ कि सम्पूर्ण स्थायी परिचालन लागतों की पूर्ति हो जाती है। इस विक्रय स्तर को सम–विच्छेद विश्लेषण के माध्यम से ज्ञात किया जा सकता है। सम–विच्छेद विश्लेषण न केवल वह न्यूनतम स्तर प्रकट करता है जो स्थायी लागतों की पूर्ति के लिए आवश्यक है अपितु वह विक्रय के विभिन्न स्तरों पर होने वाले लाभ या हानि को भी बताता है। परिचालन उत्तोलक के संदर्भ में सम–विच्छेद विश्लेषण के प्रमुख सूत्र निम्न प्रकार है–

(i) सम–विच्छेद बिन्दु पर विक्रय मात्रा:

$$\text{BEP Sales (Units)} = \frac{\text{Fixed Cost}}{\text{Countribution per unit}}$$

(ii) सम –विच्छेद बिन्दु पर विक्रय आगम:

$$\text{BEP Sales (in amount)} = \frac{\text{Fixed Cost}}{\text{P/V Ratio}}$$

यहाँ $\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Contribution}}{\text{Sales}} \times 100$

(iii) EBIT का मूल्य:

$$\text{EBIT} = \text{Contribution} - \text{Fixed Cost}$$

$$\text{EBIT} = \text{Total Sale Value} - \text{Variable Cost} - \text{Fixed Cost}$$

वित्तीय उत्तोलक :

एक संस्था क्ति पूर्ति हेतु पूँजी की लागत या प्रत्याय के दृष्टीकोण से दो प्रकार की पूँजी का प्रयोग कर सकती है– ऐसी पूँजी जिस पर एक निश्चित दर से ब्याज या लाभांस चुकाना पड़ता है, जैसे–अधिमान अंश पूँजी , ऋण–पत्र , दीर्घकालीन ऋण आदि (यद्यपि अधिमान अंशों पर लाभांश चुकाना कोई कानूनी दायित्व नहीं है, लाभों के होने पर ही इसका भुगतान किया जाता है, तथापि लाभों की विद्यमान की स्थिति में इन्हें एक निश्चित दर से ही लाभांश दिये जाने के कारण इन्हें स्थायी लागत पूँजी के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया जाता है) तथा ऐसी पूँजी जिस पर एक निश्चित दर से ब्याज या लाभांश चुकाने की आवश्यकता नही होती , जैसे –समता अंश पूँजी व प्रतिधारित अर्जनें। वित्तीय उत्तोलक यह बतलाता है कि पूँजी संरचना में स्थायी लागत पूँजी व समता पूँजी का प्रयोग किस अनुपात में किया गया है।

वित्तीय उत्तोलक उच्च या निम्न स्तर का हो सकता है। यदि संस्था में स्थायी लागत पूँजी परिवर्तनशील लागत पूँजी से अधिक है तो संस्था में उच्च स्तर का वित्तीय उत्तोलक होगा, इसके विपरीत यदि परिवर्तनशील लागत पूँजी का अनुपात स्थायी लागत पूँजी से अधिक है तो निम्न स्तर का वित्तीय उत्तोलक होगा। इस प्रकार उत्तोलक को समता पर व्यापार के नाम से भी जाना जाता है। यदि कम्पनी की अर्जनें पर्याप्त नहीं हों तो इस स्थिति में उसे परिवर्तनशील लागत पूँजी का प्रयोग अधिक करना चाहिए, अर्थात् उसे निम्न स्तर के उत्तोलक का प्रयोग अधिक करना चाहिए। इसके विपरीत यदि कम्पनी की अर्जनें अधिक हैं तो उस स्थिति में उसे स्थायी की अर्जनें अधिक तब मानी जावेंगी जबकि उसकी विनियोग पर अर्जन दर पूँजी की स्थायी लागत दर से अधिक हो।

परिभाषाएँ –

वित्तीय उत्तोलक की परिभाषाएँ निम्नानुसार हैं–

''वित्तीय उत्तोलक में स्थायी लागत कोषों का प्रयोग साधारण अंशधारियों के प्रत्याय को बढ़ाने की आशा में किया जाता है।''

वित्तीय उत्तोलक के प्रकार –

वित्तीय उत्तोलक दो प्रकार का होता है–

(i) अनुकूल वित्तीय उत्तोलक (ii) प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक

(i) अनुकूल वित्तीय उत्तोलक –

यदि स्थिर भार वाली प्रतिभूतियों के उपयोग के कारण प्रति अंश अर्जनें अधिक होती हैं तो उसे अनुकूल वित्तीय उत्तोलक कहते हैं। सामान्य प्रत्याय दर से ऋण पूँजी की लागत के कम होने पर ही अनुकूल वित्तीय उत्तोलक होगा।

(ii) प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक –

यदि स्थिर भार वाली प्रतिभूतियों के उपयोग के कारण प्रति अंश अर्जनें कम होती हैं तो इसे प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक कहा जाता है। ऐसा तब सम्भव होता है जब कम्पनी की सामान्य प्रत्याय दर ऋण–पूँजी की लागत कम होती है।

वित्तीय उत्तोलक का प्रभाव –

वित्तीय उत्तोलक दो प्रकार के प्रभाव डालता है, जो निम्नानुसार है–

(i) समता अंशधारियों की आय पर प्रभाव – अनुकूल वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में स्थिर लागत वाली पूँजी को प्रयुक्त करके समता अंशधारियों की आय को बढ़ाया जा सकता है, जबकि प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक की स्थिति अंशधारियों के लिए उपलब्ध अर्जनों में वृद्धि करता है, वहीं दूसरी ओर इसमें कमी भी करता है।

(ii) वित्तीय जोखिम पर प्रभाव – वित्तीय उत्तोलक के उपयोग से वित्तीय जोखिम बढ़ती है। एक फर्म की पूंजी संरचना में जितनी अधिक ऋण–पूंजी की मात्रा होगी, उस फर्म की वित्तीय जोखिम भी उतनी ही अधिक होगी।

वित्तीय उत्तोलक की विशेषताएँ

वित्तीय उत्तोलक की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

1. **स्थायी लागत वाली पूँजी से सम्बन्धित** – वित्तीय उत्तोलक का सम्बन्ध किसी संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी अधिक है तो उस संस्था में वित्तीय उत्तोलक अधिक होगा एवं यदि संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी कम है तो वित्तीय उत्तोलक कम होगा।

2. **चिट्ठे के दायित्व पक्ष से सम्बन्धित** – वित्तीय उत्तोलक संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी की मात्रा से प्रभावित होता है, अतः यह कहा जा सकता है कि वित्तीय उत्तोलक का सम्बन्ध संस्था के चिट्ठे के दायित्व पक्ष से है।

3. **प्रति अंश अर्जनों पर प्रभाव** – वित्तीय उत्तोलक स्थिर वित्तीय व्ययों के कारण संस्था के लाभों में होने वाले परिवर्तनों का प्रति अंश अर्जनों पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करता है।

4. **वित्तीय जोखिम** – वित्तीय उत्तोलक के कारण संस्था की वित्तीय जोखिम में वृद्धि होती है। उच्च वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में संस्था के परिचालन लाभों में वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों मे तुलनात्मक रूप से अधिक वृद्धि हो जाती है एवं परिचालन लाभों में कमी के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में तुलनात्मक रूप से अधिक गिरावट आ जाती है।

वित्तीय उत्तोलक की उपयोगिता –

1. **अंशधारियों की आय में वृद्धि –** अनुकूल वित्तीय उत्तोलक समता पूँजी पर प्रत्याय में वृद्धि करता है जिससे समता अंशो के मूल्य में वृद्धि होती हे तथा संस्था की बाजार में साख बढ़ती है। फलस्वरूप नीची ब्याज दर पर पर्याप्त ऋण आसानी से उपलब्ध हो जाते है, जिससे संस्था के लाभों में व अंशधारियों की आय में और वृद्धि होती है।

2. **लाभ नियोजन** – वित्तीय उत्तोलक की अवधारणा लाभ नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वित्तीय उत्तोलक प्रति अंश आय को प्रभावित करता है। सम–विच्छेद विश्लेषण की सहायता से इसके प्रभाव का कुशलतापूर्वक विश्लेषण करके लाभ नियोजन किया जा सकता है।

3. **अनुकूल पूँजी संरचना** – वित्तीय उत्तोलक ऋण–पूँजी व समता पूँजी में उचित संतुलन स्थापित करके स्थापित करके अनुकूलतम पूँजी संरचना के निर्धारण करने में सहायता प्रदान करता है। अनुकूल पूँजी संरचना वह होगी, जहाँ पूँजी की लागत न्यूनतम तथा अंशधारियों की प्रत्याय अधिकतम हो।

परिचालक उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक में सम्बन्ध –

परिचालक उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों ही उत्तोलक संस्था की स्थायी लागतों– स्थायी परिचालन लागत एंव स्थायी वित्तीय लागत के संस्था की लाभार्जन क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। परिचालन उत्तोलक संस्था के विक्रय में परिवर्तन का संस्था के परिचालन लाभों पर पड़ने वाले प्रभाव का मापन करता है। वित्तीय उत्तोलक संस्था के परिचालन लाभों

में परिवर्तन का प्रति अंश अर्जन पर पड़ने वाले प्रभाव का मापन करता है। इस प्रकार जहाँ परिचालन उत्तोलक समाप्त होता है वहाँ वित्तीय उत्तोलक प्रारम्भ होता है।

परिचालन उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक में निम्नलिखित अन्तर है–

VPM CLASSES

अन्तर का आधार	परिचालन उत्तोलक	वित्तीय उत्तोलक
1. उद्देश्य	परिचालन उत्तोलक का उद्देश्य विक्रय में परिवर्तन को दर्शाना है।	वित्तीय उत्तोलक का उद्देश्य परिचालन लाभों में परिवर्तन के कारण प्रति अंश अर्जनों में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाना है।
2. सम्बन्ध	परिचालन उत्तोलक परिचालन लाभों व बिक्री में सम्बन्ध बतलाता है।	वित्तीय उत्तोलक वित्तीय लाभों व समता पर प्रत्याय में सम्बन्ध बतलाता है।
3. जोखिम	परिचालन उत्तोलक व्यावसायिक जोखिम में वृद्धि करता है।	वित्तीय उत्तोलक वित्तीय जोखिम में वृद्धि करता है।
4. लाभों पर प्रभाव	परिचालन उत्तोलक संस्था के परिचालन लाभों को प्रभावित करता है।	वित्तीय उत्तोलक ब्याज व कर पश्चात् लाभों को प्रभावित करता है
5. चिट्ठे से सम्बन्ध	यह चिट्ठे के सम्पत्ति पक्ष पर प्रभाव डालता है।	यह चिट्ठे के दायित्व पक्ष पर प्रभाव डालता है।
6. निर्णय से सम्बन्ध	परिचालन उत्तोलक विनियोग निर्णयों से सम्बन्धित होता है।	वित्तीय उत्तोलक वित्त–पूर्ति निर्णयों से सम्बन्धित है।

वित्तीय उत्तोलक की गणना –

लाभ के किसी एक स्तर पर वित्तीय उत्तोलका की गणना निम्न सूत्र से की जाती है–

$$\text{Financial Leverage} = \frac{\text{Operating Profit or EBIT}}{\text{EBT}}$$

अथवा

$$\text{Financial Leverage} = \frac{\text{EBIT}}{\text{EBIT} - \text{I}}$$

यहाँ EBIT = Earnings Before Interest and Tax

EBT = Earnings Before Tax (but after interest)

I = Fixed Financial Expenses or Interest and Preferences Divident.

कम्पनी की पूँजी संरचना में अधिमान अंश होने पर अधिमान अंश लाभांश को कम्पनी हेतु लागू आयकर की दर के आधार पर कर पूर्व अर्थात् एक बनाया जाएगा और इस प्रकार सकल राशि को ही ब्याज व कर से पूर्व के लाभों (EBIT) में से घटाया जायेगा।

वित्तीय उत्तोलक की मात्रा –

लाभ के दो स्तरों की तुलना के लिए वित्तीय उत्तोलक की मात्रा का माप निम्न सूत्र की सहायता से किया जाता है–

$$\text{Degree of Finance Leverage (DFL)} = \frac{\%\text{ Changes in EPS}}{\%\text{ Change in EBIT}}$$

वैकल्पिक सूत्रः

$$\text{Degree of financial Leverage (DFL)} = \frac{\%\text{ Change in Taxable Profit}}{\%\text{ Change in Operating Profit}}$$

अथवा

$$\text{DFL} = \frac{\%\text{ Change in EBT}}{\%\text{ Change in EBIT}}$$

यदि वित्तीय उत्तोलक विद्यमान होगा तो उपर्युक्त सूत्रों में भागफल एक से अधिक होगा, अन्यथा वित्तीय उत्तोलक विद्यमान नहीं होगा। इसके अलावा लाभ के दो स्तर दिये होने पर वित्तीय उत्तोलक तथा वित्तीय उत्तोलक की मात्रा समान है, किन्तु वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (DFL) लाभ के वर्तमान स्तर के लिए होती है, न कि परिवर्तित स्तर के लिये।

प्रति अंश अर्जन की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है–

सूत्र के रूप में :

$$EPS = \frac{(EBIT - Interest)(1 - Tax\ Rate) - Preference\ Dividend}{No.of\ Equity\ Shares}$$

अथवा

$$EPS \frac{Earning\ After\ Tax - Preference\ Dividend}{No.of\ Equity\ Shares}$$

वित्तीय उत्तोलक की गणना के सम्बन्ध में पूंजी संरचना की निम्न तीन स्थितियाँ हो सकती हैं–

1. जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश एवं ऋण पूँजी हो,
2. जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश एवं पूर्वाधिकार अंश हो, तथा
3. जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश पूर्वाधिकार अंश एवं ऋण–पूँजी हो

Illustration

एक कम्पनी निम्न तीन वित्तीय योजनाओं में से किसी एक को चुनने का विकल्प रखती है। आप प्रत्येक स्थिति में वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये।

Particulars	Financial Plan (Rs.)		
	X	Y	Z
Equity Capital	50,000	30,000	60,000
Debt	30,000	50,000	20,000
Operating Profit (EBIT)	8,000	8,000	8,000
Interest on debts	10%	10%	10%

Solution : Computation of the Financial Leverage

Financial Plan (Rs.)

	A	B	C
Operating Profit (OP or EBIT)	8,000	8,000	8,000
Less: Interest (10% on debt)	3,000	5,000	2,000
Earnings Before Tax (EBT)	5,000	3,000	6,000
Financial Leverage			
$\left(\frac{EBIT}{EBT}\right)$	$\frac{8,000}{5,000}$	$\frac{8,000}{3,000}$	$\frac{8,000}{6,000}$
	=1.6	=2.67	= 1.33

वित्तीय उत्तोलक एवं पूँजी संरचना

पूँजी संरचना – का आशय ऋण पूँजी, अधिमान पूँजी तथा सामान्य अंश पूँजी में उचित सामजंस्य से है। अतः वित्तीय प्रबन्धक वैकल्पिक पूँजी संरचनाओं की परस्पर तुलना करते हुए सर्वोत्तम पूँजी संरचना अपनाने का प्रयत्न करता है। सर्वोत्तम पूँजी संरचना का मुख्य उद्देश्य न्यूनतम लागत पर पूँजी प्राप्त करते हुए सामान्य अंशधारियों को अधिकतम लाभ पहुँचाना होता है। एक कम्पनी अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि विभिन्न प्रकार के साधनों से एवं विभिन्न अनुपातों में कर सकती है, जैसे – (i) केवल समता अंश पूँजी का प्रयोग, (ii) केवल अधिमान अंश पूँजी का प्रयोग, (iii) केवल ऋण–पूँजी का प्रयोग , (iv) एक से अधिक साधनों का एक साथ प्रयोग । अब समस्या यह है कि प्रबन्धक इन विभिन्न विकल्पों में से किस विकल्प का प्रयोग करें। इस हेतु प्रति अंश अर्जनों को स्थायी पूँजी लागत (स्थायी वित्तीय व्यय) किस प्रकार प्रभावित करते हैं, यह ज्ञात करने के लिए EBIT व EPS में सम्बन्ध स्थापित कर अध्ययन किया जाता है।

वित्तीय सम–विच्छेद बिन्दु –

वित्तीय सम–विच्छेद बिन्दु से तात्पर्य उस स्तर से है, जहाँ पर EBIT की राशि स्थायी वित्तीय व्ययों के ठीक बराबर होती है। अर्थात् यह वह स्तर है, जहाँ पर EBIT में से स्थायी वित्तीय व्ययों को घटा देने के पश्चात् समता अंशधारियों के लिए कोई राशि शेष नहीं बचती और प्रति अंश अर्जन (EPS) शून्य होती है।

अन्य शब्दों में – EBIT का वह स्तर जहाँ फर्म केवल अपने स्थायी वित्तीय व्ययों की पूर्ति कर पाती है, वित्तीय सम–विच्छेद बिन्दु कहलाता है। यदि EBIT, इस स्तर से कम होगी अर्थात् स्थायी वित्तीय व्यय EBIT से अधिक होंगे तो फर्म हानि दर्शायेगी।

संयुक्त उत्तोलक–

स्थायी परिचालन व्यय एवं स्थायी वित्तीय व्ययों के आधार पर ज्ञात कुल उत्तोलक ही संयुक्त उत्तोलक के नाम से जाना जाता है। इसकी गणना परिचालन उत्तोलक की मात्रा (DOL) तथा वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (DFL) के सूत्रों से ही की जाती है।

EBIT का एक ही स्तर दिशा होने पर संयुक्त उत्तोलक की मात्रा निम्न प्रकार ज्ञात की जा सकती है–

Combined Leverage = Operating Leverage × Financial Leverage

अथवा

$$\text{Combined Leverage} = \frac{\text{Contribution}}{\text{EBIT}} \times \frac{\text{EBIT}}{\text{EBT}} = \frac{\text{Contribution}}{\text{EBT}}$$

संयुक्त उत्तोलक की मात्रा

संयुक्त उत्तोलक की मात्रा की गणना हेतु परिचालन उत्तोलक की मात्रा को परस्पर गुणा किया जाता है। सूत्र रूप में :

$$\text{Degree of combined Leverage (DCL)} = \begin{matrix}\text{Degree of} \\ \text{Operating} \\ \text{Leverage}\end{matrix} \times \begin{matrix}\text{Degree of} \\ \text{Financial} \\ \text{Leverage}\end{matrix}$$

अथवा

$$\text{DCL} = \left(\frac{\%\ \text{Change in EBIT}}{\%\ \text{Change in Sales}}\right) \times \left(\frac{\%\ \text{Change in EPS}}{\%\ \text{Change in EBIT}}\right) = \frac{\%\ \text{Change in EPS}}{\%\ \text{Change in Sales}}$$

संयुक्त उत्तोलक बिक्री के कारण अंशदान तथा कर पूर्व अर्जन (EBT) में सम्बन्ध दर्शाता है। संयुक्त उत्तोलक की मात्रा द्वारा बिक्री में प्रतिशत परिवर्तन के फलस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन का माप किया जाता है।

भारत लिमिटेड का चिट्ठा निम्न प्रकार है–

The Bharat Limited's balance sheet is as follows:

Balance Sheet

Liabilities	Amount Rs.	Assets	Amount Rs.
Equity Capital (Rs. 10 per share)	1,20,000	Net Fixed Assets Current Assets	3,00,000 1,00,000
10% Long-term debts	1,60,000		
Retained Earnings	40,000		
Current Liabilities	80,000		
	4,00,000		4,00,000

कम्पनी का कुल सम्पत्ति आवर्त अनुपात 3.0 है। इसकी स्थायी परिचालन लागत 2,00,000 रूपये है तथा इसकी परिवर्तनशील लागत अनुपात 40% है। आय कर की दर 30% है।

कम्पनी के लिए तीनों प्रकार के उत्तोलकों की गणना कीजिए।

Solution **Income Statement of Bharat Limited**

	Rs.
Sales	12,00,000
Less : Variable Costs (being 40% of sales)	4,80,000
Contribution	7,20,000
Less : Fixed Costs	2,00,00
EBIT	5,20,000
Less : Interest Cost	16,000
EBT	5,04,200
Less : Taxes @ 30%	1,51,200
Earning After Taxes (EAT)	3,52,800

(i) Degree of Operating Leverage (DOL):

$$DOL = \frac{Sales - VariableCosts}{EBIT}$$

$$= \frac{12,00,000 - 4,80,000}{5,20,000} = \frac{7,20,000}{5,20,000} = 1,385 \text{ approximately}$$

(ii) Degree of Financial Leverage (DFL)

$$DFL = \frac{EBIT}{EBIT - \text{Fixed Interest Charges or I}}$$

$$= \frac{5,20,000}{5,20,00 - 16,000} = \frac{5,20,000}{5,04,000} = 1.032 \text{ Approximately.}$$

(iii) Degree of combined Leverage (DCL):

DCL = DOL × DFL = 1,385 × 1,032 = 1,429 approximately]

Working Note:

(1) Total Assets turnover turnover ratio = $\frac{\text{Sales}}{\text{Total Assets}}$

$$3 = \frac{\text{Sales}}{4,00,000}$$

Sales = 3 × 4,00,000 = Rs. 12,00,000.

पूँजी संरचना –

पूँजी संरचना का अर्थ एवं परिभाषा –

एक व्यवसायिक संस्था में पूँजीकरण की राशि का निर्धारण करने के बाद पूँजी संरचना का निर्धारण करना आवश्यक होता है। पूँजी संरचना का अर्थ, पूँजीकरण राशि को किन-किन प्रतिभूतियों द्वारा, किस-किस अनुपात में प्राप्त करने के निर्धारण करने से होता है। पूँजी विशिष्ट पूँजी-संरचना प्रदान करें जा कम्पनी की आवश्यकताओं को पूरा करने में पूर्ण रूप से सक्षम हो। पूँजी संरचना जिन प्रतिभूतियों द्वारा निर्धारित की जाती है उनमें प्रत्येक प्रतिभूति के अपने-अपने गुण एवं दोष होते हैं। किसी कम्पनी की पूँजी संरचना में किसी एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिभूतियों का अधिक भाग होना आगे चलकर कम्पनी के लिए अधिक लाभदायक अथवा अधिक जोखिमपूर्ण हो सकता है। कम्पनी की पूँजी संस्चना का निर्धारण अत्यधिक सोच-समझ कर करना चाहिए। किसी आदर्श पूँजी सरंचना की कल्पना करना कठिन है, जिसे सभी कम्पनियों एवं व्यवसायों में समान रूप से लागू किया जा सके। अतः प्रत्येक व्यक्तिगत स्थिति में प्रत्येक कम्पनी के लिए उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार पूँजी संरचना का निर्धारण करना चाहिए।

वित्तीय संरचना, पूँजी संरचना तथा सम्पत्ति संरचना –

वित्तीय संरचना (Financial Structure)–यह संरचना व्यक्त करती है कि संस्था ने अपनी सम्पत्तियों की वित्तीय व्यवस्था किस प्रकार की है, यह स्थिति विविरण के समस्त बायें हाथ के भाग को योग होता है। वित्तीय संरचना के अन्तर्गत व्यवसाय के समस्त दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन दायित्वों को सम्मिलित किया जाता है।

वित्तीय संरचना = दीर्घकालीन कोष व चालू दायित्व

अथवा

पूँजी संरचना + चालू

पूँजी संरचना (Capital Structure)–**फर्म की स्थायी वित्तीय व्यवस्था पूँजी संरचना है** जो सामान्यतया दीर्घकालीन ऋण, पूर्वाधिकार अंश एवं समता द्वारा व्यक्त होती है, जिसमें अल्पकालीन साख सम्मिलित नहीं होती है। समता में समता अंश पूँजी, आधिक्य तथ्ज्ञा संचित धारित आय सम्मिलित होती है। इस अर्थ में पूँजी संरचना का तात्पर्य संस्था की स्थायी पूँजी से लगाया जाता है।

पूँजी संरचना = दीर्घकालीन कोष

= संचय एवं कोष + दीर्घकालीन ऋण

एक संस्था की पूँजी संरचना को चार्ट से देखा जा सकता है :

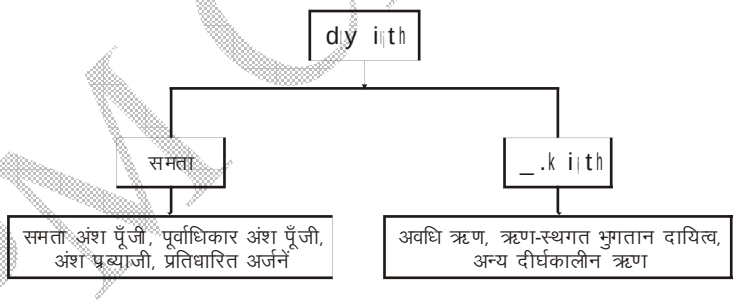

चार्ट. एक संस्था की कुल पूँजी संरचना

सम्पत्ति संरचना (Assets Structure)–इसका तात्पर्य संस्था की कुल सम्पत्तियों के योग से होता है।

सम्पत्ति संरचना = स्थायी सम्पत्तियाँ + चालू सम्पत्तियाँ + अन्य सम्पत्तियाँ (यदि कोई हों)

पूँजी संरचना के प्रारूप

किसी नवीन कम्पनी में पूँजी संरचना का प्रारूप निम्नलिखित में से कोई एक हो सकता है–

(i) केवल समता अंशों युक्त पूँजी संरचना (Capital structure with equity shares only),

(ii) समता अंशों तथा पूर्वाधिकार अंशो, दोनों युक्त पूँजी संरचना (Capital structure with both equity and preference sares),

(iii) समता अंशो तथा ऋणा-पत्रों युक्त पूँजी संरचना (Capital structure with equity shares and debentures),

(iv) समता अंशों, पूर्वाधिकार अंशों तथा ऋण-पत्रों युक्त पूँजी संरचना (Capital structure iwth equity shares, prefernece shares and debentures)।

उपयुक्त पूँजी संरचना का चुनाव कम्पनी के व्यवसाय की प्रकृति, आय की निश्चितता एवं नियमितता मुद्रा एवं पूँजी बाजार की स्थिति, विनियोक्ताओं के दृष्टिकोण जैसे अनेक तत्त्वों पर निर्भर करता है। ऋण एक दायित्व होता है, जिस पर ब्याज चुकाना होता है, चाहे संस्था के लाभ की स्थिति कैसी भी हो, जबकि समता अंशधारी कम्पनी के स्वामी होते हैं जिनको लाभाश का भुगतान कम्पनी की लाभदायकता पर निर्भर करता है। कम्पनी की पूँजी संरचना में ऋण का ऊँचा अनुपात जोखिम को बढ़ाता है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में कम्पनी को वित्तीय दिवालियापन की स्थिति में ले जा सकता है। ऋण द्वारा साधन प्राप्त करना अंशों के द्वारा साधन प्राप्त करने की तुलना में सस्ता (Cheaper) होता है, क्योंकि ऋण पर देय ब्याज कर की दृष्टि से व्यय माना जाता है तथा उसके लिए कर से छूट प्राप्त होती है। लाभांश कम्पनी में लाभों का समायोजन माना जाता है, अतः लाभांश भुगतान से कम्पनी को कर में कोई छूट प्राप्त नहीं होती है। इसका अर्थ यह है कि यदि कोई कम्पनी अपने ऋण-पत्रों पर 10% ब्याज देती है तथा अपने लाभों पर 50% निगम कर चुकाती है, तो कम्पनी के लिए ऋण-पत्रों पर प्रभावी ब्याज दर केवल 5% होती है। परन्तु कम्पनी यदि वित्त 10% पूर्वाधिकार अंशों से प्राप्त करती है तो पूँजी की लागत 10% होती है। इसलिए ऋण द्वारा वित्त प्राप्त करना सस्ता होता है तथा यह अंशधारियों के लिए ऊँचे लाभों को सम्भव बनाता है। इसका परिणाम प्रति अंश अर्जन का बढ़ना होता है, जो वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है।

Illustration 1:

अजय लिमिटेड की प्रदत्त अंश पूँजी 2,00,000 रूपये है जो 10 रू. मूल्य के समता अंशों में विभक्त है। कम्पनी एक विस्तार कार्य पर विचार कर रही है, जिसमें 1,00,000 रूपयें का विनियोग आवश्यक है। कम्पनी प्रबन्ध इस राशि की व्यवस्था के लिए निम्न विकल्पों पर विचार कर रहा है–

(i) 10% ऋण-पत्र 1,00,000 रूपये मूल्य का निर्गमन।

(ii) 12% समता अंशों जिनमें प्रत्येक का अंकित मूल्य 10 रूपये है, का निर्गमन।

कम्पनी की वर्तमान आय ब्याज तथा कर पूर्व 80,000 रूपये है। निगम कर की दर 30% है। आप उपरोक्त वित्त प्राप्ति की विधियों के प्रति अंश अर्जन या आय (EPS) पर प्रभाव बताइए यह मानते हुए कि–

(अ) ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) विस्तार कार्यक्रम के बाद भी स्थिर रहती है; तथा

(ब) ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) 20,000 रूपये से बढ़ जाती है।

Solution : **(a) When EBIT is Rs. 80,000 p.a.**

Present and Projected EPS

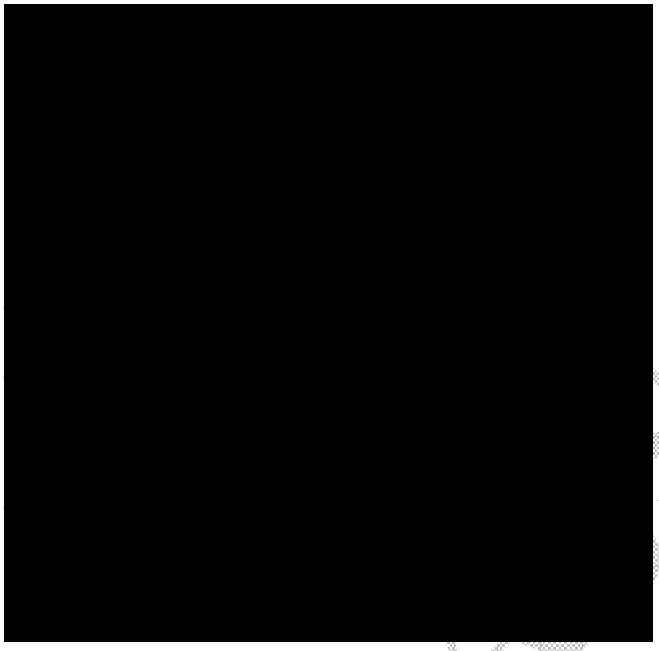

टिप्पणी– उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि EPS में न्यूनतम कमी उस समय होती है, जब अतिरिक्त समस्त राशि ऋण-पत्रों से प्राप्त की जाती ळें

(b) When EBIT is Rs. 1,00,000

Present and Projected EPS

टिप्पणी– वर्तमान EPS 2.80 रूपये है, जो ऋण द्वारा विस्तार के लिए साधन प्राप्त करने पर बढ़कर 3. 15. रूपये हो जाती है। अतः यह विकल्प सर्वात्तम है।

तटस्थ बिन्दु –

उपरोक्त उदाहरणों में विभित्र वित्त विकल्पों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि जब एक कम्पनी को अपने विनियोगों पर ऋण पूँजी की लागत से अधिक आय प्राप्त होती है तो ऋण पूँजी द्वारा वित्त प्रबन्धन करके समता अंशधारियों की प्रति अंश आय को अधिक करना सम्भव होता है। अतः प्रश्न यह उठता है कि प्रबन्ध को कितनी सीमा तक ऋण प्राप्त करना चाहिए। इसका उत्तर बड़ा सरल है। अतिरिक्त ऋण पूँजी की लागत से जब तक अतिरिक्त आय की मात्रा अधिक हो तब ऋण पूँजी का प्रयोग करना चाहिए। जहाँ अतिरिक्त लागत तथा अतिरिक्त आय बराबर होगी वह ऋण पूँजी की अधिकतम सीमा होगी। इस स्तर पर प्रति अंश अर्जन (EPS) समान होगी चाहे ऋण-समता मिश्रण या मिलान कुछ भी हो। इसे ब्याज तथा कर पूर्व आय (EBIT) का तटस्थ बिन्दु या उदासीनता बिन्दु (Point of Indifference) कहते हैं। यह वह बिन्दु होता है जिस पर विनियोजित पूँजी की प्रत्याय दर ऋण पूँजी पर ब्याज दर के समान होती है। यदि कम्पनी की विनियोजित पूँजी पर सम्भावित आय इस तटस्थ बिन्दु के स्तर के बहुत अधिक है तो कम्पनी को ऋण-पत्रों से पूँजी जुटानी चाहिए। यदि सम्भावत आय इस बिन्दु से कम होने की सम्भावना है तो समता अंश पूँजी द्वारा साधन जुटाना अधिक लाभप्रद होगा, क्योंकि ऐसा करने से प्रति अंश अर्जन (EPS) अधिक होगी। तटस्थता बिन्दु विश्लेषण से संस्था के लिए बिन्दु की गणना निम्न बीजगणितीय सूत्र द्वारा की जा सकती है–

जहाँ X = EBIT का तटस्थता बिन्दु।

I_1 = प्रथम विकल्प में ब्याज दर या राशि। I_2 = दूसरे विकल्प में ब्याज दर या राशि।

T = कर दर। PD = पूर्वाधिकार लाभांश।

S_1 = प्रथम विकल्प में समता अंशो की संख्या या समता अंश पूँजी।

S_2 = द्वितीय विकल्प में समता अंशों की संख्या या समता अंश पूँजी।

पूँजी-संरचना को प्रभावित करने वाले तत्त्व –

पूँजी-सरंचना को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को दो वर्गों में बाँटा जाता है– (अ) आन्तरिक तत्त्व, तथा (ब) बाह्य तत्त्व। इन दोनों प्रकार के तत्त्वों का यहाँ अध्ययन किया जा सकता है।

पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को निम्न रेखा चार्ट से देखा जा सकता है–

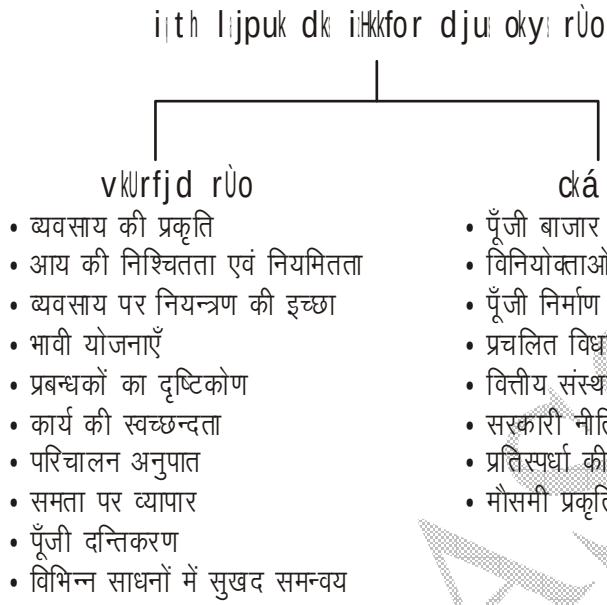

चार्ट पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले तत्त्व

(अ) आन्तरिक तत्त्व (Internal Factors) :

इसके अन्तर्गत निम्न तत्त्व सम्मिलित होते है–

1. **व्यवसाय की प्रकृति** (Nature of the Business)–कम्पनी के व्यवसाय की प्रकृति पूँजी-संरचना को सर्वाधिक रूप से प्रभावित करती है। जो संस्थाएँ निर्माणकारी कार्यों में लगी होती हैं उनमें स्थायी पूँजी की अधिक तथा कार्यशील पूँजी की कम आवश्यकता होती है जबकि **व्यापार कार्य** में लगी संस्थाओं में स्थायी पूँजी कम तथा कार्यशील पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है। जिन संस्थाओं में स्थायी पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है वे संस्थाएँ अपनी पूँजी का एक बड़ा भाग ऋण पूँजी द्वारा प्राप्त करती हैं। वित्तीय एवं बैंकिग संस्थाओं से अपनी साख के आधार पर ऋण सुविधाएँ आसानी से प्राप्त कर सकती है।

2. **आय की निश्चिता एवं नियमितता** (Regularity and Certainty of Income)–पूँजी-संरचना आय की निश्चितता एवं नियमितता से भी प्रभावित होती है। एक संस्था को ऋण-पत्र एवं बॉण्ड तभी निर्गमित करने चाहिए जब संस्था की आय भविष्य में निश्चित एवं नियमित हो। जब धनराशि की कुछ समय तक

ही जरूरत हो तथा बाद में आवश्यकता ने हो तो विमोचनशील पूर्वाधिकार अंश निर्गमित किये जोन चाहिए। जब संस्था की आय के बारे में अनिश्चितता हो तब **समता अंशों** का निर्गमन किया जाना चाहिए।

3. **व्यवासय पर नियन्त्रण की इच्छा** (Desire to Control the Business)—पूंजी-संरचना व्यापार पर नियन्त्रण की इच्छा से भी प्रभावित होती है। यदि कम्पनी का नियन्त्रण प्रवर्त्तकों, संस्थापकों अथवा कुछ ही व्यक्तियों के समूह के हाथों में केन्द्रित रखना होता है तो समता अंशों का निर्गमन किया जाता है, जिसका एक बड़ा भाग कुछ लोगों के पास केन्द्रित रखा जाता है तथा शेष भाग अनेक छोटे-छोटे अंशधारियों में बाँट दिया जाता है। कम्पनी को जब अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है तो बाद में यह पूर्वाधिकारी अंशों अथवा ऋण-पत्रों से प्राप्त की जाती है जिन्हें प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार नहीं होती है।

4. **भावी योजनाएँ** (Future Plans)—एक संस्था की पूँजी-संरचना केवल वर्तमान को ही ध्यान में रखकर नहीं बनायी जाती है, बल्कि संस्था की भावी विकास योजनाओं को भी ध्यान में रखकर बनाई जाती है। इस उद्देश्य के लिए अधिकृत पूँजी अधिक रखी जाती है जिसे भविष्य में आवश्यकता के समय निर्गमित किया जा सके। प्रारम्भ में समता अंशों से पूँजी प्राप्त की जाती है। बाद में पूर्वाधिकार अंश तथा ऋण-पत्रों से पूँजी प्राप्त की जाती है। संस्था की भावी योजनाओं को ध्यान में रखकार में रखकर पूँजी संरचना की निर्माण करना चाहिए।

5. **प्रबन्धकों का दृष्टिकोण** (Attitude of Management)—पूँजी संरचना पर प्रबन्धको के दृष्टिकोण का गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रबन्धकों के भावी अनुमान, अनिश्चितता वे जोखिम को सहन करने की क्षमता, प्रबन्धकों का अनुभव इत्यादि विभिन्न तत्त्वों को ध्यान में रखकर ही अंश-पूँजी व ऋण-पूँजी की अनुपात निश्चित किया जाता है।

6. **कार्य की स्वच्छन्दता** (Freedom of Working)—कुछ संस्थापक व्यवसाय की नीति निर्धारण व निर्णयों में अन्य व्यक्तियों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते हैं। इस आशय के लिए वे पूँजी संरचना इस प्रकार करते है।

7. **परिचालन अनुपात**—सामान्यतया उच्च्स परिचालन अनुपात ऐसे व्यवसायों में होता है, जिनमें मुख्यतः वस्तुओं का क्रय.विक्रय, मरम्मत या माल का परिष्करण किया जाता है तथा जिनमें स्थायी सम्पत्तियों एवं

यन्त्रों का प्रयोग कम तथा श्रम शक्ति का प्रयोग अधिक होता है। इसके विपरीत निम्न परिचालन अनुपात सामान्यतया उत्पादक व्यवसायों में होता है। ऐसे व्यवसाय में श्रम शक्ति की अपेक्षा स्थिर सम्पत्तियों व संयन्त्रों का अधिक प्रयोग होता है।

8. **समता पर व्यापार** – कभी–कभी व्यवसाय के प्रवर्त्तक या प्रबन्धक अधिक लाभ अर्जन की आकांक्षा में न्यूनतम विनियोग के द्वारा व्यवसाय पर अधिकतम नियन्त्रण करना चाहते हैं जिससे समता अंश पूँजी पर ऊँचा लाभांश घेषित करके यथासम्भव अधिक से अधिक लाभ कमाया जा सके। इस आशय के लिए जिस सिद्धान्त का सहारा लिया जाता है, उसे ट्रेडिंग ऑन ईक्विटी कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार बहुत थोड़ी मात्रा में साधारण अंशों का निर्गममन करके शेष पूँजी की व्यवस्था दीर्घकालीन ऋणों द्वारा की जाती है तथा उन्हीं के आधार पर कार्य संचालन भी किया जाता है। ऐसा करने से संस्था के स्वामी न्यूनतम विनियोग करके अधिकतम सम्पत्तियों के स्वामी हो जाते हैं।

9. **पूँजी दन्तिकरण** – परिवर्तनशील लागत प्रतिभूतियों (साधारण अंश) व स्थायी लागत प्रतिभूतियों (पूर्वाधिकार अंश व ऋण पूँजी) के मध्य अनुपात को वित्तीय प्रबन्ध की भाषा में दन्ति अनुपात के नाम से जाना जाता है। सस्था में उच्च तथा निम्न दन्ति अनुपात हो सकता है। ऐसी संस्थाएँ जहाँ दन्ति अनुपात उच्च होता है, वहाँ साधारण अंशों में उतनी ही सट्टे की सम्भावना अधिक होती है तथा संस्था के साधारण अंशों के बाजार मूल्य सट्टे से प्रभावित होते रहते हैं।

10. **व्यवसाय का आकार –** व्यवसाय का आकार भी पूँजी संरचना के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हे। छोटे आकार के व्यवसाय में कम धन की आवश्यकता के कारण अंश पूँजी का अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है, जबकि बड़ी व्यवसायिक संस्थाओं में अशों एवं ऋण–पत्रों का चयन उनकी लागत के आधार पर किया जाता है।

बाह्य तत्त्व –

बाह्य तत्वों में निम्न वर्णित तत्त्व अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं:

1. **पूँजी बाजार की दशाएँ** – मन्दी की दशाओं में जब ब्याज दर कम होती है तथा लाभ की सम्भावनाएँ अनिश्चित व अनियमित होती हैं, ऐसी स्थिति में साधारण अंशों के अपेक्षाकृत ऋणपत्र अधिक लोकप्रिय होते हैं। साधारणतया यह समय ऋण–पत्रों के निर्गमन के लिए अधिक उचित होता है तथा ऐसी दशा में कम्पनी द्वारा पूर्व निर्गमित ऊँची ब्याज दर वाले ऋण–पत्रों का भुगतान करके नीचे ब्याज दर वाले

नये ऋण–पत्र निर्गमित किये जा सकते हैं। इसके विपरीत तेजी की स्थिति में लाभ अर्जन की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं तथा लोगों के पास विनियोजन के लिए पर्याप्त धन भी होता है, अतः ऋण–पत्रों की अपेक्षा साधारण अंशों की बाजार में माँग बढ जाती है। अतः तेजी की स्थिति में साधारण अंशों की भारी माँग के कारण इन्हें प्रब्याजि पर भी निर्गमित किया जा सकता है।

2. **विनियोक्ताओं की प्रकृति एवं प्रकार** – कुछ विनियोक्ता साहसी होते हैं एवं जोखिम उठाने को तत्पर रहते हैं जबकि अन्य अधिक सतर्क होते हैं तथा की सुरक्षा तथा प्रत्याय की निश्चितता चाहते हैं अतः सभी प्रकार के विनियोक्ताओं की माँग के स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता होती है। उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखकर साधारणतया कम्पनियाँ विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का निर्गमन करती हैं, ताकि विभिन्न प्रकार के विनियोक्ता एक या अधिक प्रकार की प्रतिभूति में धन विनियोजित कर सकें।
3. **पूँजी निर्गमन की लागत** – पूँजी निर्गमन की लागत भी पूँजी संरचना को पर्याप्त सीमा तक प्रभावित करती है। पूँजी की लागत में अभिगोपन व्यय, दलाली तथा बट्टा इत्यादि सम्मिलित किये जाते हैं। प्रायः व्यावसायिक संस्थाएँ इन लागतों को न्यूनतम रखना चाहती हैं, अतः सामान्यतः ऐसी प्रतिभूतियों के निर्गमन को प्राथमिकता दी जाती है, जिनके निर्गमन की लागत अपेक्षाकृत कम हो।
4. **प्रचलित विधान एवं नियम** – देश में प्रचलित विधान एवं नियम तथा उनमें भविष्य में परिवर्तन की सम्भावनाएँ भी पूँजी संरचना को प्रभावित करती हैं।
5. **वित्तीय संस्थाओं की नीति** – एक देश की वित्तीय संस्थाओं की नीति भी पूँजी संरचना को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए भारत में औद्योगिक वित्त प्रदाता संस्थाएँ समता ऋण अनुपात 1 : 2 पर बल देती हैं अतः ऋण–पूँजी समता पूँजी से दुगनी से अधिक नहीं होनी चाहिए।
6. **सरकारी नीति –** सरकार की नीति भी उद्योग, व्यापार, सेवा आदि के बारे में परिवर्तित होती रहती है।
7. **प्रतिस्पर्धा की स्थिति** – सामान्यता जनहित में परिवहन व जनोपयोगी सेवाओं में प्रतिस्पर्धा को समाप्त कर सार्वजनिक एकाधिकार स्थापित किया जाता है अतः ऐसी संस्थाओं की आय स्थिर एवं निश्चित होती है। इसलिए ये अपने पूँजी ढाँचे में ऋण पूँजी अधिक रखती हैं।
8. **मौसमी प्रकृति** – यदि किसी उद्योग की प्रकृति मौसमी अधिक होती है, जैसे – चीनी उद्योग, तब ऐसे उद्योग को मौसम विशेष में अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है अतः इसकी आपूर्ति के लिए दीर्घकालीन ऋणों के स्थान पर अल्पकालीन ऋणों का अधिक सहारा लिया जाता है।

आदर्श पूंजी संरचना के गुण

आदर्श या अनुकूलम पूँजी संस्चना के गुण

सामान्यतया पूँजी संरचना में निम्न गुण होने चाहिए

1. **सरलता** – कम्पनी का पूँजी ढाँचा प्रारम्भ में बिल्कुल सरल होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं होनी चाहिए। सरलता का तात्पर्य यह है कि प्रारम्भ में कम से कम प्रकार की प्रतिभूतियों से धन संग्रह किया जाए।
2. **लोचपूर्णता** – पूँजी ढाँचे को निर्धारण केवल उपक्रम की तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए ही नहीं किया जाता है, बल्कि दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिए भी किया जाता है। अतः पूँजी ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिए जिससे व्यवसाय की बढती हुई आवश्यकताओं के लिए भविष्य में भी वित्त प्राप्त किया जा सके। कम पूँजी की आवश्यकता होने पर पूँजी अथवा कोषों को कम करना भी सम्भव होना चाहिए।
3. **पूर्ण उपयोग** – पूँजी की मात्रा का निर्धारण इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे संस्था में न तो अल्प–पूँजीकरण हो तथा न ही अति–पूँजीकरण हो तथा न ही अति–पूँजीकरण हो। संस्था में उचित पूँजीकरण होना चाहिए।
4. **पर्याप्त तरलता** – कम्पनी का पूँजी ढाँचा तथा सम्पत्तियों का मिश्रण इस प्रकार का होना चाहिए जिससे संस्था के पास सदैव पर्याप्त तरलता रहे। संस्था को अपनी पूँजी का उचित भाग सदैव तरल सम्पत्तियों में रखना चाहिए।
5. **न्यूनतम लागत** – पूँजी विभिन्न साधनों से एकत्र की जा सकती है तथा प्रत्येक साधन की लागत लगती है। पूँजी ढाँचे का चुनाव इस प्रकार किया जाए जिससे पूँजी संग्रह की लागत न्यूनतम हो। कुछ साधनों की लागत अधिक तथा कुछ की कम होती है। विभिन्न साधनों का ऐसा मिश्रण चुना जाना चाहिए जिससे पूँजी की औसत भार युक्त लागत न्यूनतम हो।
6. **न्यूनतम जोखिम** – कम्पनी के व्यवसाय में अनेक प्रकार की जोखिमें होती है, जो करों की मात्रा , लागतों मे परिवर्तन, मूल्यों मे परिवर्तन, ब्याज दरों में परिवर्तन आदि से घटती–बढ़ती रहती है। पूँजी ढाँचे का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे इनका प्रभाव कम से कम पड़ें

7. **अधिकतम नियन्त्रण** – एक कम्पनी पर साधारण अंशधारियों का नियन्त्रण होता है, क्योंकि पूर्वाधिकार अंशधारियों तथा ऋण–पत्रधारियों को मतदान का अधिकारी नहीं होता है।

8. **अधिकतम लाभदायकता** – किसी भी व्यावसायिक संस्था के लिए आदर्श पूँजी ढाँचा वह होगा जिसके द्वारा व्यवसाय की लाभदायकता अधिकतम हो सके। यद्यपि लाभदायक व्यवसाय के प्रबन्ध की कुशलता पर निर्भर करती है, परन्तु पूँजी की लागत भी इसे प्रभावित करती है। अतः पूँजी ढाँचा ऐसा होना चाहिए पूँजी की लागत कम हो।

9. **वैधानिक मान्यताओं के अनुरूप** – पूँजी संरचना के निर्धारण हेतु वैधानिक मान्यताओं का विशेष ध्यान रखा जाता है। भारत मे सेबी द्वारा ऋण–समता अनुपात पर अधिक बल दिया जाता है। अतः पूँजी संरचना हेतु वैधानिक व आर्थिक मान्यताओं का ध्यान रखा जाता है।

पूंजी की लागत –

पूँजी संरचना में 'पूँजी की लागत' की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, अतः विभिन्न प्रतिभूतियों से धन एकत्रित करते समय पूँजी की लागत को ध्यान में रखना आवश्यक है। जब अतिरिक्त पूँजी का निर्गमन करना तो उस समय यह समस्या विशेष रूप से उपस्थित होती है कि अतिरिक्त पूँजी किस साधन से प्राप्त की जाये, अर्थात् साधारण अंशों से या पूर्वाधिकार अंशों से ऋण–पत्रों से। एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या यह उत्पन्न होती है कि यदि एक से अधिक साधनों से पूँजी प्राप्त करनी है तो विभिन्न साधनों का सम्मिश्रण (Mix) क्या होगा ? उपर्युक्त दोनों ही समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न साधनों से पूँजी जुटाने में अन्तर्निहित जोखिम, आय तथा नियन्त्रण को तो ध्यान में रखा ही जाता है किन्तु पूँजी की लागत को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है, क्योंकि पूँजी की लागत व्यवसाय की लाभ अर्जन शक्ति पर सीधा प्रभाव डालती है। अतः वित्तीय प्रबन्धक को चाहिए कि व्यवसाय के लिए पूँजी की व्यवस्था करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखे कि व्यवसाय की आय पर पूँजी की लागत का अनावश्यक भार न पड़े। फर्म के प्रबन्ध को अनुकूलतम पूँजी ढाँचे का निर्माण करते समय पूँजी की लागत को न्यूनतम तथा फर्म के मूल्य को अधिकतम करने का प्रयास करना होता है।

ब्याज एवं कर–पूर्व आय (EBIT) के तटस्थता बिन्दु द्वारा ऋण–समता के उचित मिश्रण का निर्धारण किया जा सकता है।

पूँजी संरचना अनुपात –

यहाँ पर संक्षेप में इनका वर्णन किया गया है–

1. **ऋण–स्वामी पूँजी अनुपात** – इसकी गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है–

$$\text{Debt-Equity Ratio} = \frac{\text{External Equities}}{\text{Internal Equities}}$$

अथवा

$$\frac{\text{Long – term Borrowings + Short term Borrowings}}{\text{Equity Share Capital + Preference Share Capital + Reserver \& Surplus – Fictitious Assets}}$$

साधारणतया 1 : 1 का ऋण–स्वामी पूँजी अनुपात सन्तोषप्रद माना जाता है

2. **दीर्घकाली ऋण–पूँजीकरण अनुपात** – यह अनुपात संस्था के कुल पूँजीकरण में दीर्घकालीन ऋणों के अनुपात को प्रदर्शित करता है। इस अनुपात की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है।

$$\text{Long-term Debt-Captialisation Ratio} = \frac{\text{Longterm Debt}}{\text{Capitalisation}}$$

or

$$= \frac{\text{Long term Debt}}{\text{Preference share Capital + Equity Share Capital + Reserves and Surplus + Long term Debt}}$$

or

$$= \frac{\text{Long term Debt}}{\text{Net Worth + Long term Debt}}$$

3. **स्वामित्व अनुपात** – यह अनुपात स्वामियों के कोषों तथा कुल मूर्त सम्पत्तियों या कुल समताओं के मध्य सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है–

$$\text{Proprietory Ratio} = \frac{\text{Proprietory Funds}}{\text{Total Tangible Assets}}$$

or

$$= \frac{\text{Preference Share Capital + Equity Share Capital + Reserves and Surplus}}{\text{Total Tangible Assets}}$$

$$= \frac{\text{Net Worth}}{\text{Total Tangible Assets}}$$

4. **गियर अनुपात** – गियर अनुपात का तात्पर्य स्थिर आय पूँजी एवं परिवर्तनशील आय पूँजी के मध्य सम्बन्ध से है। स्थिर आय पूँजी का तात्पर्य उस पूँजी से होता है, जिस पर प्रत्याय की दर निश्चित अथवा स्थिर है, जैसे ऋण पूँजी पर ब्याज की दर स्थिर है व निश्चित है तथा पूर्वाधिकार अंश पूँजी पर लाभांश की दर स्थिर एवं निश्चित होती है। इसके विपरीत परिवर्तनशील आय पूँजी का तात्पर्य समता अंश अथवा साधारण अंश पूँजी तथा उन कोषों से होता है, जिनका स्वामित्व समता अंशधारियों के पास है।

इस अनुपात को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है–

$$\text{Gearing Ratio} = \frac{\text{Fixed Charge Capital}}{\text{Variable Charge Capital}}$$

$$= \frac{\text{Preference Share Capital} + \text{Debentures \& Long-term Loans}}{\text{Equity Share Capital} + \text{Reserves and Surplus}}$$

एक उच्च पूँजी गियरिंग वह होता है, जिसमें समता अंश पूँजी गियरिंग वह है जिसमें कुल का अधिकांश भाग साधारण अंश पूँजी से प्राप्त किया गया हो।

5. **ऋण सेवा अनुपात अथवा ब्याज अर्जन अनुपात** यह अनुपात ब्याज तथा कर से पूर्व शुद्ध आय (EBIT) में देय ब्याज का भाग देकर प्राप्त किया जाता है। सूत्र रूप में–

$$\text{Times Interest Earned Radio} = \frac{\text{EBIT}}{\text{Interest Payable}}$$

यह अनुपात जितना अधिक होता है, संस्था पर ब्याज का सापेक्षिक भार उतना ही कम होता है। देय ब्याज की तुलना में ब्याज तथा कर से पूर्व शुद्ध आय 6–7 गुना होनी चाहिए। यह अनुपात ऊँचा होने पर ऋणदाताओं का हित सुरक्षित होता है।